

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 7 अध्याय 5: प्रह्लाद की भक्ति

14 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



एक असुर-राज अपने नन्हे पुत्र को गोद में बैठाता है, पितृ-स्नेह से उसका मस्तक सूँघता है, और उससे कहता है कि जो सीखा है, वह सुनाए। बालक उस एक शब्द से उत्तर देता है जिसे सुनना पिता सह नहीं सकता: हरि। और यहीं से समस्त शास्त्रों की सबसे प्रसिद्ध भक्ति-परीक्षा आरम्भ होती है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में सन्त-शिशु प्रह्लाद असुर-राज हिरण्यकशिपु के घर में जन्मा, ईश्वर-प्रेम में इतना लीन कि संसार से मानो अपरिचित। सप्तम स्कन्ध का यह पंचम अध्याय वह कथा सुनाता है जिसे भक्तों की पीढ़ियों ने प्रायः किसी भी अन्य कथा से अधिक प्रेम किया है: एक पिता का स्नेह एक पिता की आस्था से टकरा जाता है, जब वह अपने नन्हे पुत्र से पूछता है कि उसका हृदय, एक शब्द में, कहाँ पहुँच गया है। यह वह अध्याय है जिसमें शुद्ध भक्ति नग्न शक्ति से भिड़ती है, और भक्ति तनिक भी नहीं डिगती।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 7 (सप्तम स्कन्ध)
- अध्याय: 5
- अध्याय-शीर्षक: प्रह्लाद की निर्भय भक्ति और पिता का क्रोध
- मुख्य वक्ता: देवर्षि नारद (सम्राट युधिष्ठिर को कथा सुनाते हुए); कथा के भीतर, प्रह्लाद तथा हिरण्यकशिपु
- मुख्य श्रोता: सम्राट युधिष्ठिर; कथा के भीतर, हिरण्यकशिपु, असुर-गुरु, तथा प्रह्लाद के सहपाठी
- मुख्य स्थान: हिरण्यकशिपु का महल तथा असुर-गुरुओं शण्ड एवं अमर्क की पाठशाला
- मुख्य विषय-वस्तु: प्रह्लाद की भगवान् विष्णु के प्रति अटल भक्ति, उसका भक्ति के नौ रूपों का उपदेश, तथा पिता के उसके प्राण लेने के विफल प्रयास
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 7, अध्याय 5, श्लोक 1-57
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पाठशाला में बालक

नारद आगे कहते हैं। भृगु-वंशी विद्वान ऋषि शुक्राचार्य असुरों के पुरोहित थे, और उनके दो पुत्र शण्ड तथा अमर्क महल के निकट रहते और प्रह्लाद के गुरु बने। उन्होंने उसे, अन्य असुर-बालकों सहित, हर जानने योग्य सांसारिक विषय पढ़ाया। प्रह्लाद जो पढ़ाया जाता उसे पूर्णतः दोहरा देता — पर हृदय से वह उसे स्वीकार न करता, क्योंकि वह संसार को मित्र तथा शत्रु में बाँटने के मिथ्या भेद पर टिका था।

एक दिन हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र को गोद में बैठाया और सच्चे स्नेह से उससे पूछा कि जो कुछ उसने सीखा है, उसमें से सर्वोत्तम क्या है, वह बताए। बालक का उत्तर सीधे मर्म तक गया — और सीधे उस हर बात के विरुद्ध गया जिसके लिए उसका पिता जीता था:

श्रीप्रह्लाद उवाच

तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां

सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात् ।

हित्वात्मपातं गृहमन्धकूपं

वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत् ॥ ५ ॥

śrī-prahlāda uvāca tat sādhu manye ‘sura-varya dehinām sadā samudvigna-dhiyām asad-grahāt hitvātma-pātaṁ gṛham andha-kūpaṁ vanam gato yad dharim āśrayeta

अर्थ: प्रह्लाद ने कहा: हे असुरश्रेष्ठ! जिन देहधारियों का मन असत् के आग्रह के कारण सदा उद्विग्न रहता है, उनके लिए मैं इसी को सच्चा कल्याण मानता हूँ — कि आत्मा को नीचे गिराने वाले, ढके हुए अन्धकूप-समान घर को त्यागकर मनुष्य वन में जाकर श्रीहरि की शरण ले। (SB 7.5.5)

हिरण्यकशिपु केवल हँसा, यह मानकर कि शत्रुओं ने बालक का मन बिगाड़ दिया है, और आदेश दिया कि प्रह्लाद को विष्णु के प्रति गुप्त रूप से समर्पित किसी भी ब्राह्मण से दूर रखकर कड़ी निगरानी में रखा जाए।

“लोहा जैसे चुम्बक की ओर”

गुरुओं के घर लौटने पर शण्ड तथा अमर्क ने बालक से कोमलता से, फुसलाते हुए पूछा कि किसने उसका चिन्तन बिगाड़ा है। प्रह्लाद का उत्तर वह स्वीकृति न थी जिसकी उन्हें आशा थी, अपितु कृपा की एक शान्त साक्षी थी। “यह मेरा है और वह दूसरा है” — यह मिथ्या धारणा, उसने कहा, भगवान् की माया का कार्य है, और वह तभी दूर होती है जब भगवान् प्रसन्न होते हैं — यहाँ तक कि ब्रह्मा जैसे महात्मा भी कभी-कभी इस विषय में मोहित हो जाते हैं, उसने जोड़ा, तो उसके अपने पिता का न समझ पाना कोई आश्चर्य नहीं। उसके हृदय का यह परिवर्तन, उसने स्पष्ट किया, उसका अपना किया हुआ कुछ भी नहीं था:

यथा भ्राम्यत्ययो ब्रह्मन् स्वयमाकर्षसन्निधौ ।
तथा मे भिद्यते चेतश्चक्रपाणेर्यदृच्छया ॥ १४ ॥

yathā bhrāmyaty ayo brahman svayam ākarṣa-sannidhau tathā me bhidyate cetaś cakra-pāṇer yadṛcchayā

अर्थ: जिस प्रकार चुम्बक के निकट रखा लोहा अपने आप ही उसकी ओर खिंच जाता है, उसने कहा, उसी प्रकार उसका हृदय — अपनी नहीं, भगवान् की इच्छा से बदला हुआ — श्रीविष्णु की ओर खिंचता है, जो अपने हाथ में चक्र धारण करते हैं। (SB 7.5.14)

पुत्र द्वारा इस परिवर्तन का श्रेय स्वयं को न देने पर क्रुद्ध होकर गुरु ने उसे बेंत की धमकी दी, उसे दिति के चन्दन-समान पुत्रों के बीच एक काँटेदार झाड़ी कहा, और उसके पश्चात् उसे केवल धन, भोग तथा धार्मिक विधि के सांसारिक लक्ष्य ही पढ़ाए।



असुर-गुरु शण्ड तथा अमर्क बालक प्रह्लाद से पूछते हैं कि किसने उसका मन भगवान् विष्णु की ओर मोड़ा — पर बालक केवल भगवान् की कृपा की साक्षी देता है (SB 7.5.8-14)।

भक्ति के नौ रूप

बालक को सुधरा हुआ मानकर गुरुओं ने उसे नहला-सँवारकर पुनः उसके पिता के समक्ष प्रस्तुत किया। आनन्दित होकर हिरण्यकशिपु ने उसे गले लगाया, गोद में बैठाया, उसका मस्तक सूँघा, तथा स्नेह के आँसुओं से भिगो दिया, फिर उससे पूछा कि जो सर्वोत्तम बात सीखी है, वह दोहराए। प्रह्लाद ने उन वचनों से उत्तर दिया जो भक्ति-जीवन के मूल-अधिकार-पत्र बन गए हैं:

श्रीप्रह्लाद उवाच

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ २३ ॥

इति पुंसां पितृ विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा ।

क्रियेत भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥ २४ ॥

śrī-prahrāda uvāca śravaṇaṁ kīrtanaṁ viṣṇoḥ smaraṇaṁ pāda-sevanam arcanam vandanaṁ dāsyam sakhyam ātma-nivedanam iti puṁsāṁ pitaro viṣṇau bhaktiś cen nava-lakṣaṇā kriyeta bhagavaty addhā tan manye 'dhītam uttamam

अर्थ: प्रह्लाद ने कहा: भगवान् विष्णु की महिमा का श्रवण तथा कीर्तन करना, उनका स्मरण करना, उनके चरणों की सेवा करना, उनकी अर्चना करना, उन्हें वन्दन करना, उनका दास बनना, उनसे सख्य करना, तथा अपना समस्त आत्म-समर्पण उन्हें अर्पित करना — यदि इन नौ रूपों वाली भक्ति भगवान् विष्णु को साक्षात् अर्पित की जाए, तो उसी को मैं सर्वोत्तम विद्या मानता हूँ। (SB 7.5.23-24)

यह सुनकर हिरण्यकशिपु क्रोध से गुरु-पुत्र पर टूट पड़ा, उस पर ऐसा पढ़ाने का आरोप लगाते हुए। गुरु-पुत्र ने सत्यतापूर्वक कहा कि किसी ने बालक को यह नहीं सिखाया — यह दृष्टि उसमें स्वाभाविक ही है। जब पिता ने प्रह्लाद से पूछा कि फिर यह और कहाँ से आ सकती है, तो बालक ने उत्तर दिया कि जो घर में आसक्त हैं तथा अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं कर पाते, वे बार-बार संसार के भँवर में गिरते हैं, अन्धे अन्धों को राह दिखाते हैं — और उसने अपने पिता को स्पष्ट बताया कि ऐसे लोग भगवान् के निकट क्यों नहीं पहुँच पाते:

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं

स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः ।

महीयसां पादरजोऽभिषेकं

निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत् ॥ ३२ ॥

*naiṣāṁ matis tāvad urukramāṅghrīm spṛśaty anarthāpagamo yad-arthaḥ mahīyasāṁ pāda-
rajo-‘bhiṣekaṁ niṣkiñcanānāṁ na vṛṇīta yāvat*

अर्थ: ऐसे सांसारिक लोगों का मन भगवान् के उन चरणों को — जिनका स्पर्श समस्त अनर्थ दूर कर देता है — तब तक स्पर्श नहीं कर सकता, जब तक वे उन महात्माओं के चरणों की धूल में स्नान नहीं कर लेते जो किसी वस्तु को अपना नहीं कहते। (SB 7.5.32)

ऐसे भक्तों की शरण ही, प्रह्लाद ने कहा, वह द्वार खोल सकती है।



पुनः पिता की गोद में बैठाया गया प्रह्लाद निर्भय होकर भगवान् विष्णु की भक्ति के नौ रूपों को समस्त विद्याओं में सर्वोत्तम घोषित करता है (SB 7.5.22-24)।

एक पिता हत्यारा बन जाता है

यह असुर-राज के सहने से परे था। क्रोध से अन्धा होकर उसने बालक को अपनी गोद से भूमि पर पटक दिया और अपने राक्षसों को तत्क्षण उसका वध करने का आदेश दिया। प्रह्लाद, उसने गरजते हुए कहा, एक विश्वासघाती है जो विष्णु की पूजा करता है, जिसने उसके अपने चाचा का वध किया; रोगग्रस्त अंग को काट देना चाहिए ताकि शरीर जीवित रहे; बालक को किसी भी उपाय से नष्ट कर देना चाहिए — विष से, या सोते

समय, या असावधान बैठे हुए।

अपने स्वामी की आज्ञा से भयंकर असुर उस बालक पर टूट पड़े जो पूर्णतः निश्चल बैठा था, उस पर भाले चलाते तथा “काट डालो” चिल्लाते हुए। पर उनके प्रहारों का उतना भी असर न हुआ जितना किसी अभागे के सत्कर्मों का, क्योंकि प्रह्लाद का मन ब्रह्माण्ड की परम आत्मा में पूर्णतः लीन था, और कोई अस्त्र वहाँ न पहुँच सका जहाँ उसका हृदय चला गया था।



हिरण्यकशिपु की आज्ञा से असुर निश्चल बैठे प्रह्लाद पर प्रहार करते हैं, पर उनके अस्त्र उस बालक को हानि नहीं पहुँचा सकते जिसका मन पूर्णतः भगवान् में स्थित है (SB 7.5.39-41)।

हर अस्त्र विफल

यह देखकर घबराकर कि उसका निष्पाप पुत्र मारा नहीं जा सकता, हिरण्यकशिपु ने एक के बाद एक उपाय किए। उसने बालक को दिग्गजों से कुचलवाया, नागों से डँसवाया, विनाशकारी मन्त्रों से प्रहार करवाया, पर्वत-शिखरों से गिरवाया, बन्दी बनाकर भूखा रखवाया, विष दिलवाया, पाले, झुलसाती अग्नि तथा डुबोते जल में डलवाया, और भारी शिलाओं तले दबवाया। इनमें से कोई भी उसे छू तक न सका। गहनतम चिन्ता में डूबकर असुर-राज को यह भय सताने लगा कि यह निर्भय, मानो अमर बालक एक दिन उसके अपने पतन का कारण बनेगा।

उसके गुरुओं शण्ड तथा अमर्क ने धैर्य की सलाह दी: जब तक उनके पिता शुक्राचार्य न लौटें, बालक को वरुण के पाशों से बाँध रखा जाए, क्योंकि मनुष्य की बुद्धि प्रायः आयु के साथ तथा सत्पुरुषों की सेवा से परिपक्व होती है। हिरण्यकशिपु मान गया, और आदेश दिया कि प्रह्लाद को केवल गृहस्थ राजाओं के योग्य कर्तव्य — धर्म, अर्थ तथा काम — ही पढ़ाए जाएँ। फिर भी बालक ने इन सांसारिक लक्ष्यों में से किसी को स्वीकार न किया। और जब गुरु दूर था तथा उसके नन्हे साथी उसके चारों ओर खेलने को एकत्र हुए, तो प्रह्लाद ने, सदा दयालु तथा मैत्रीपूर्ण, इसके स्थान पर उनसे भगवान् की चर्चा आरम्भ की — वह उपदेश जो आगामी अध्याय को भरता है।



विष, नाग, अग्नि, जल, कुचलते दिग्गज, तथा भारी शिलाएँ — हर उपाय विफल हो जाता है, क्योंकि निष्पाप बालक प्रह्लाद भगवान् की शरण में है (SB 7.5.43-44)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. भक्ति सीखी नहीं जाती; वह कृपा से जागती है। प्रह्लाद बल देकर कहता है कि किसी गुरु ने उसे ईश्वर-प्रेम नहीं दिया — यह भगवान् का ही उपहार है, जो “मेरा” तथा “पराया” के भ्रम को दूर करता है। सच्ची भक्ति प्रयास से नहीं गढ़ी जाती, अपितु कृपा से प्राप्त होती है (SB 7.5.11-14)।
2. भक्ति के नौ रूप ही सर्वोत्तम विद्या हैं। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन — भगवान् को अर्पित ये नौ, प्रह्लाद द्वारा समस्त ज्ञान का लक्ष्य घोषित किए गए हैं (SB 7.5.23-24)।
3. भगवान् के भक्तों की कृपा बिना हम भगवान् तक नहीं पहुँच सकते। प्रह्लाद सिखाता है कि भगवान् तक मार्ग उन्हीं से होकर जाता है जो पहले ही उन तक पहुँच चुके हैं — जब तक हृदय किसी निष्किंचन महात्मा की शरण नहीं लेता, वह भगवान् के चरणों के निकट भी नहीं पहुँच सकता (SB 7.5.32)।
4. भगवान् की रक्षा बाहर से किया गया कोई चमत्कार नहीं है; यह स्वतः घटित होती है जब आत्मा पहले ही वहाँ पहुँच चुकी हो जहाँ पदार्थ नहीं पहुँच सकता। भाला, विष, अग्नि, जल, नाग तथा शिला — सब प्रह्लाद के सामने इसलिए विफल नहीं होते कि हर एक को अलग-अलग रोका गया, अपितु इसलिए कि उसका मन पूर्णतः उस परमात्मा में स्थिर है, जो किसी भी भौतिक साधन की पहुँच से परे है (SB 7.5.41)। यही कारण है कि न कोई गुरु उसकी भक्ति को रोप सका, न कोई पिता उसे उखाड़ सका: जैसा शण्ड ने स्वयं हिरण्यकशिपु से स्वीकार किया, बालक को किसी ने कुछ नहीं सिखाया — उसका हरि-प्रेम स्वतः प्रकट हुआ था, प्रयास, जन्म या पालन-पोषण की उपलब्धि नहीं अपितु कृपा का उपहार (SB 7.5.28-29)। इस प्रकार की भक्ति किसी भी सांसारिक शक्ति के, चाहे वह कितनी ही निरंकुश क्यों न हो, अधिकार-क्षेत्र से परे है।

एक भाक्तेपूर्ण चिन्तन

प्रह्लाद की कथा को इतना प्रिय बनाने वाली बात मुख्यतः चमत्कार नहीं हैं — वे भाले जो नहीं भेदते, वह विष जो नहीं मारता। यह उस छोटे बालक की स्थिरता है जिसने बस डरना छोड़ दिया है। वह ब्रह्माण्ड के सबसे शक्तिशाली तथा भयंकर प्राणी की गोद में बैठकर कोमलता से कहता है कि जीवन में सर्वोत्तम बात हरि की शरण लेना है। उसे पटका जाता है, धमकाया जाता है, उस पर प्रहार होता है, और वह न तर्क करता है न काँपता है; उसका मन पहले ही वहाँ चला गया है जहाँ कोई अस्त्र पीछा नहीं कर सकता। हमसे भाले सहने को नहीं कहा जाता, पर हमसे प्रतिदिन यह चुनने को कहा जाता है कि हम अपने चारों ओर के दबावों को चुनें या भीतर की शरण को। प्रह्लाद दिखाता है कि वह शरण सच्ची है, और वह एक बालक को भी, शत्रु के घर में भी, सुलभ है। भगवान् में स्थिर हृदय ही समस्त लोकों में वह एकमात्र स्थान है जहाँ भय प्रवेश नहीं कर सकता।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज प्रह्लाद द्वारा गिनाए गए भक्ति के नौ रूपों में से केवल एक को अपनाएँ। आप भगवान् की महिमा का कोई अंश सुन या पढ़ सकते हैं (श्रवण), या उनके किसी नाम का धीरे से जप कर सकते हैं (कीर्तन), या अपने कार्य के बीच ठहरकर उनका स्मरण कर सकते हैं (स्मरण)। एक चुनें, और उसे ध्यानपूर्वक करें, उसे साक्षात् उन्हें अर्पित करते हुए, भीतर दोहराते हुए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” भक्ति का यह एक धागा, जैसा प्रह्लाद के लिए था, वैसे ही एक ऐसी शरण बने जिसे दिन की चिन्ताएँ तोड़ न सकें।

उपसंहार

सप्तम स्कन्ध का पंचम अध्याय प्रह्लाद-कथा का धड़कता हृदय है, और इसका वास्तविक विषय जीवित बच जाने का चमत्कार नहीं, अपितु भक्ति का स्वरूप ही है। एक बालक जो अपने प्रयास से कुछ भी अर्जित करने की आयु में भी नहीं है, पहले से ही वह रखता है जो उसके पिता का सारा राज्य नहीं खरीद सकता — वह हृदय जिसे स्वयं भगवान् ने अपना बना लिया है। इसीलिए न कोई अस्त्र, न कोई गुरु, न कोई अत्याचारी उस तक पहुँच सकता है — कृपा के रूप में प्राप्त भक्ति सीधे उनके अधिकार-क्षेत्र से परे है। हिरण्यकशिपु का क्रोध केवल उसी सत्य को सिद्ध करता है जिसे वह देखने से इनकार करता है। जैसे ही अध्याय समाप्त होता है, प्रह्लाद अपने प्रताड़कों से मुड़कर अपने नन्हे साथियों की ओर होता है, इसी निर्भय शरण को आगामी अध्याय के उपदेश तक ले जाने को तैयार।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, पूर्ण), सप्तम स्कन्ध, पंचम प्रवचन, पृष्ठ 666–671।
- शृंखला: Srīmad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या भाष्य का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा संबद्धता या समर्थन का कोई अभिप्राय नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-7-chapter-5-prahlada-fearless-devotion-nine-forms-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

